ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय

श्री भगवान् में अनन्य और विशुद्ध प्रेम होने पर भगवान् की प्राप्ति शीघ्र होती है। 'अनन्य' का अभिप्राय है भगवान् के सिवा अन्य किसी में भी प्रेम न हो और विशुद्ध का अभिप्राय है अन्य किसी भी प्रकार की कामना न हो– पूर्ण निष्काम भाव है। इस असली प्रेम की प्राप्ति के लिए साधकों को सब में भगवत् - बुद्धि करनी चाहिए।

कुछ काल पूर्व तो यह देखा जाता था कि कितने ही साधक दूसरे साधकों को देख कर खुश हो जाते हैं, मग्न हो जाते, हरे-भरे हो जाते और उसमें गुणबुद्धि करते थे। दोष बुद्धि तो उनकी कभी होती ही नहीं थी। अपने से एक दूसरे में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सद्गुण और सदाचार अधिक दीखते एवं यह सब मुझमें आवें ऐसी आकांक्षा रखते, किन्तु आजकल तो कई लोग दूसरे में दोष बुद्धि करके उसमें अवगुण ही अवगुण देखते हैं, यह प्रत्यक्ष पतन का मार्ग है। इसी कारण अधिकांश साधकों की उन्नति नहीं होती।

यह सारा संसार भगवान का ही संकल्प होने के कारण भगवान का ही स्वरूप है। अत: सबमें भगवत् भाव करके हम निरअभिमान और निष्काम भाव से सबकी सेवा करें तो यह बहुत ही उत्तम साधन है। यह निश्चित है कि दूसरों में दोष बुद्धि होने से ही द्वेष भाव की बुद्धि होती है।

और गुण बुद्धि होने से स्वाभाविक ही प्रेम होता है।

दोष तो केवल अपने सुधार के लिए केवल अपने में ही देखने चाहिए। अपने दोषों को देखने पर वे दोष ठहरते ही नहीं। दूसरों में तो गुणबुद्धि ही होनी चाहिए दोष बुद्धि तो होनी ही नहीं चाहिए। दूसरों में दोष बुद्धि करने से बड़ी भारी हानि है। दोष तो मल के समान है। मल के साथ किसी वस्त्र का या अंग का स्पर्श हो जाता है तो वह गंदा हो जाता है। यदि हम दूसरे के दोषों को नेत्रों से देखते हैं तो हमारे नेत्र गंदे हो जाते हैं। वाणी से किसी के दोष की चर्चा करते हैं तो वाणी गंदी हो जाती है। और मन से, पर दोष चिन्तन करते हैं तो मन गंदा हो जाता है। इस तरह दोषों के संग से मनुष्य मलिन होकर उसका पतन हो जाता है।

यही नहीं, दूसरों के दोषों का कथन, श्रवण, दर्शन और चिन्तन करने में और भी अनेक दोष हैं–

(१) दूसरों में अवगुण बुद्धि होने से उसके प्रति घृणा होती है। और अपने में अच्छेपन का अभिमान बढ़ता है जो महान हानिकारक है।

(२) दूसरों की निन्दा करने और सुनने से जिसकी हम निन्दा करते या सुनते हैं, उसे बड़ा दु:ख होता है तो यह भी हमको पाप लगता है।

(३) दूसरों के दोषों के चिन्तन, दर्शन, श्रवण और कथन से उनके संस्कार बीज रूप से हमारे अन्त:करण में जमते हैं, जो भविष्य में वृक्ष रूप होकर हमें भी वैसा ही दोषी बना देते हैं।

(४) किसी के भी दोषों की आलोचना करने, सुनने और कहने से उसके दोषों के अणु अपने अंदर आते हैं।

इन सब बातों को विचार कर मनुष्य को उचित है कि दूसरों के अवगुण, दुर्गण, दुराचार, दुर्व्यसन को न कभी देखे, न आलोचना करे, न संकल्प करें, न कहें और न सुने, क्योंकि यह सभी कर्म पापमय, महान हानि कर एवं पतन कारक हैं। अत: कल्याण कामी मनुष्य को इनसे सर्वथा बचकर रहना चाहिए, क्योंकि इन दोषों के रहते हुए सब में प्रेम होना तो दूर रहा, उल्टे द्वेष की ही वृद्धि होती है। प्रेम तो सब में गुण बुद्धि करने से होता है।

प्रेम होने के लिए और प्रेम की वृद्धि के लिए निर्वाभिमान और निष्काम भाव से उनकी सेवा करना, हरेक प्रकार से उनको सुख पहुँचाना और उनमें गुण बुद्धि करके उनके गुणों का ही दर्शन आलोचना कथन और गायन करना चाहिए।

इससे ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे व्यक्ति में भी प्रेम हो सकता है।

कोई भी मनुष्य हमारे सन्मुख उपस्थित हो, हमारी किसी भी भेंट हो, हमें उसका हित कैसे हो– यह सोच कर उसकी निष्काम भाव से सेवा करनी चाहिए। उसके गुणों को देखकर मुग्ध होना चाहिए, प्रसन्न होना चाहिए, हरा-भरा हो जाना चाहिए और गुणग्राही बनना चाहिए।

जब निरन्तर सभी प्राणियों में ॐ आनन्दमय की भावना की जाती है तब शीघ्र ही साधक के चित्त से अहंकार सहित स्पर्दा, ईर्ष्या, तिरस्कार आदि सारे दोष दूर हो जाते हैं।

–श्री विश्वशान्ति आश्रम
त्रिवेणीपुरम् , झूँसी-

इलाहाबाद।

ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय

कॅचना तजना सहज है। सहज त्रिया का नेह।।
मान-बड़ाई ईर्ष्या। दुर्लभ तजना येह।।

मानव जीवन केवल मात्र सर्वशक्तिमान, ब्रह्म सृष्टि के निर्माता ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी को पूर्ण रूप से समर्पण करने के लिये ही मिला है। श्री गीता २ श्लोक ६१, अ०३ श्लोक ३०, अ० १८ श्लोक ५७-५८।

अज्ञान से और भ्रम से मोहित जीव कृपानिधान ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी के अधिकारों को स्वयं बलपूर्वक छीनकर सृष्टि-निर्माण के अधिकार को लेकर पापमय कर्मों में बलपूर्वक लगा रहता है। समय की गति तीव्र रफ्तार से भाग रही है। गया हुआ समय फिर वापस नहीं आने का।

भगवत आदेशों में मान्यता की कमी हर समय वाद-विवाद की बाहुल्यता, राग-द्वेष, ईर्ष्या, कलह के जाम से आगे बढ़ने में रुकावट आती रहती है। यदि इन सबमें लगने वाले परिश्रम को, भगवत भावों को श्री विश्वशान्ति ग्रन्थ के नियमानुसार अपने ही दुर्गुणों, दुराचारों के मूलोच्छेद करने में और सद्गुण, सदाचारों को धारण में लगाया जाता, तो न तो उतनी हानि होती है और न ही समाज में इतना अपवाद फैलता और न ही धर्म स्थानों में इतना असंयम और व्यभिचार ही घुसता है।

दोष दर्शन-दोष बुद्धि-दुर्गुणों का फल है।
भगवत दर्शन-सद्गुण-सदाचारों का फल है।

सद्बुद्धि प्रदान करने वाले एवं सदा पुनीत कर्मों की प्रेरणा जगाये रखने वाले ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी का आदेश है कि हे प्यारे प्रेमियों मेरे ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय नाम रूप को मत भूलो, मुझे सर्वत्र, सब रूपों में और अपने हृदय में मानों। यही आदेश की हम लोग दैनिक दो बार प्रतिज्ञा करते हैं कि हे ज्ञान दाता भगवान, मेरे ज्ञान में चराचर, सब कुछ श्री आप ही हैं, एक श्री आनन्दमय भगवान ही अनेक रूपों में हैं। परन्तु इनमें पूर्ण श्रद्धा न होने के कारण ही समय-समय पर परिस्थिति वश दिमाग में भूकम्प आते रहते हैं।

श्री गीता शास्त्र में भी यही आदेश जगह-जगह कथन किया है और अन्त में इसका निर्णय दे दिया अ०१८ के ५८ श्लोक में कि इस प्रकार मेरी कृपा से समस्त संकटों से मुक्त हो जायेगा। और यदि अहंकार के कारण राग-द्वेष, कलह-क्लेश भोग-दर्शन, दोष दर्शन करता रहेगा। मेरे आदेशों को नहीं सुनेगा तो नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। परन्तु मनुष्य के अन्दर अहम् की वृत्ति प्रबल रहती है। और इस अहम् वृत्ति ही दीमक और घुन की तरह, अन्दर के पौष्टिक तत्त्वों को समाप्त कर खोखला कर देती है। ऐसे ही मानव की अहम् वृत्ति भगवत-आदेशों को त्याग कर दोष-दर्शन, भोग-दर्शन करते हुये राग-द्वेष, ईर्ष्या, कलह-क्लेश, नाराज़गी और क्रोध से हितकारी, परमार्थमय दिमाग को खोखला अर्थात् चौपट कर देती हैं। हाँ जबकि भगवत आदेश है वैराग्य करने का न कि राग करने का।

दण्ड पद के दाता सर्वज्ञ ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी स्वयं ही मनुष्यों के द्वारा होने वाले शुभ-अशुभ, परमार्थमय, स्वार्थमय कर्मों के दण्ड-पद की व्यवस्था करते रहते हैं फिर हमें क्या अधिकार है कि हम दूसरों में दोष दर्शन कर आपस में अथवा समाज में श्रवण कथन करें। हम स्वयं दण्ड के भागी बने और दूसरों को भी दण्ड के भोक्ता बनाये इस प्रकार का भगवत-विधान विरुद्ध घोर पापमय हम कर्म क्यों करें और क्यों करायें। हमें जो अधिकार दिया है कर्त्तव्य कर्मों की करने की प्रेरणा दी है। हम उसी का पालन करें।

दण्ड पद के दाता दयामय प्रभु पिता जी कर्मों के अनुसार ही व्यवस्था कर रहे हैं साथ ही साथ हमें चेतावनी भी देते हैं कि सम्पूर्ण मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले राग-द्वेष, ईर्ष्या-कलह, भोगदर्शन, दोष-दर्शन करने का भुगतान मैं स्वयं ही करता हूँ। अ० १८ श्लोक ५८ । मैंने सारी व्यवस्था मानव के स्वभाव कर्मों के अनुसार कर रखी है। फिर अब तुम्हें उसके स्वभाव कर्मों की आपस में अथवा समाज में श्रवण, कथन करने की चर्चा करने की क्या जरूरत है, क्या आवश्यकता पड़ गयी। तुमको तो मेरा आदेश वैराग्य करने का था। श्री सच्ची प्रेम भक्ति के आठवें मंत्र में था और तुम प्रतिज्ञा भी करते हो। अत: इस प्रकार के कर्मों के करने से फिर तुम भी मेरे द्वारा होने वाले दण्ड से नहीं बचोगे। अ० १८ श्लोक ५८।

ॐ

शान्तिमय

ॐ आनन्दमय **ॐ शान्तिमय**

परम पुनीत कर्मों के महान-तत्त्वज्ञ ॐ श्री महापुरुष भगवान सदैव परमार्थ-मय भावों से मन-बुद्धि में पुनीत-श्रेष्ठ कर्मों को करते रहने की जाग्रति करते रहते हैं।

इस ब्रह्म-सृष्टि के शासक, मालिक, स्वामी, पालन-कर्त्ता संचालन-कर्त्ता एवं संहार करता स्वयं ही हैं। परम श्रेष्ठ पुनीत कर्मों की धारावत सिंचाई करने के लिये श्री सच्ची-प्रेम भक्ति के २१ मंत्रों में ज्ञान-जल की धारा प्रवाहित कर दी है।

ब्रह्म बल शक्ति, के शासक प्रभु पिता ने सम्पूर्ण-व्यवस्थाओं पर स्वयं अपना शासन कर संचालन कर रहे हैं। उनके बिना न कण उड़ सकता है और न पहाड़ हिल सकता है। हाँ यही अपने व्यवस्थाओं का प्रबन्ध करते हुये कण को अचल कर पहाड़ों को हिला देते हैं।

अचल, अस्थिर, अथाह, जल, राशि वाले समुद्र को भी भूकम्प द्वारा उछालते रहते हैं। अनन्त अपार महिमा में स्थित प्रभु पिता जी पुनीत श्रेष्ठ कर्मों की जाग्रति कर महावीर दिमाग बना देते हैं। एवं अनिष्टकारी दुष्कर्मों के प्रभाव से दिमाग को चौपट कर देते हैं।

श्री गीता अ॰ १८ श्लोक ६१ का हिन्दी अर्थ उच्चारण किया जा रहा है।

सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के हृदय-कमल में स्थित ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी कहते हैं कि शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुये, सम्पूर्ण प्राणियों को मैं अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय-कमल में स्थित हूँ।

अनन्त अपार-महिमा में स्थित ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी की छत्र-छाया में हम लोगों को जो कुछ प्राप्त है, प्राप्त होगा, वह सभी दुर्लभ अमोद्य है उसमें से हम लोगों को राज-विद्या अध्ययन करने का सर्वोत्तम शास्त्र, अमृतमय ज्ञान से परिपूर्ण श्री गीता को आपस में स्वाध्याय करने का, पठन, श्रवण करने का, एवं उसके तत्त्व रहस्य को जानने-समझने, धारण करने का जो शुभ अवसर प्राप्त हो रहा है और साथ ही साथ ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जो समय-शक्ति प्रदान कर रहे हैं। यह सब उनकी जो दया की सीमा है उस सीमा को पार कर करके, यह दया नहीं है तो और क्या है? इस प्रकार शुभ अवसर ऐसा वातावरण कितनों को प्राप्त हो रहा है।

अधिकांश जीवन तो पशु से भी नीचा व्यतीत हो रहा है। कुछ तो पशु के सदृश कार्य करते हैं। कुछ चेतने पर जागते है, फिर सो जाते हैं। कितने आश्चर्य की भाँति देख-सुन कर स्तब्ध हो जाते हैं एवं कुछ-कुछ देख, सुनकर, पढ़कर समझते हैं कि ज्ञान अच्छा है, ग्रन्थ अच्छा है, साधन भी ठीक है। परन्तु श्रद्धा-विश्वास न होने के कारण ॐ आनन्द प्रभु जी संकल्प-शून्य कर देते हैं। कुछ-कुछ पाठ करते हैं। स्वाध्याय में समय लगाते हैं–

परन्तु जब तक तत्त्वदर्शी, ब्रह्मदर्शी श्री समाधि मग्न महापुरुषों का संयोग प्राप्त नहीं होता, तब तक श्री गीता जी के ज्ञान का रहस्य समझ में नहीं आ सकता।

वास्तव में हर समय, हर परिस्थिति में सम-शान्त प्रसन्न रहते हुये श्रद्धा-प्रेम, उत्साह, तत्परता का दर्शन, श्रवण कराने वाला और दया के तत्त्व को समझने वाला ही भक्त कहलाने का पात्र बनता है। भक्त के लिये सब परिस्थितियाँ समान हो जाती हैं। वह फिर हर समय भगवत-आनन्द में मग्न रहता है।

अत: नरम-कोमल तागा तो सूई के छेद से पार हो जाता है परन्तु ऐठा, अकड़ा हुआ तागा सूई के छेद में नहीं जा सकता। इसी प्रकार सरल, नम्र, विनयी, निरंकारी दिमाग ही प्रभु भक्ति का पात्र बनता है, मान-सम्मान, भोग, कामना से ऐंठा अकड़ा दिमाग प्रभु पिता जी की दया, कृपा का, पात्र नहीं बन सकता। ॐ शान्तिमय

श्री विश्वशान्ति आश्रम

त्रिवेणीपुरम् , झूँसी, इलाहाबाद।

ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय

दण्ड-पद के दाता ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी किसी के जाली अहङ्कार की पद-प्रतिष्ठा सदा स्थिर नहीं रहने देते हर समय चलायमान करते हुये अन्त में नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं।

ॐ आनन्दमय भगवान के विपरीत चलने वाले अर्थात् ॐ आनन्दमय भगवान के बनाये हुये विधान के विपरीत चलने वाले, हमेशा से नष्ट-भ्रष्ट होते आये हैं और भविष्य में भी होते ही रहेंगे।

इस नश्वर सुखरहित मनमोहक दु:खमय-अशान्तिदाक प्रदूषणों से भरे हुये शरीर को कोई भी वैज्ञानिक, विशेषज्ञ, डॉक्टर सिद्ध-साधक योगी, महात्मा सदा निरोग स्वस्थ प्रसन्न नहीं रख सकते अन्त में कुछ ग्राम-राख ही शेष रह जाती है।

ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी के बनाये हुये नियमों व विधानों के विपरीत कर्म-धर्म करने वाले असंख्यों जीव चौरासी लाख के चक्कर में घूम रहे हैं श्री गीता अ० १८ श्लोक ६१ । और अब पुन: मानव जीवन को प्राप्त करने पर भी हजारों-हजारों की संख्या में ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी के विधान के विपरीत कर्म-धर्म कर सदा जीवन में पश्चाताप के ताप से तपायमान रहते हुये पुन: ८४ लाख के चक्कर में जाने की, घूमने की, तैयारी कर ली है, श्री गीता अ०१६ श्लोक १७, १८, १९, २० ।

मनुष्य का शरीर संसार चक्र में घूमने के लिये नहीं मिला है, यह संसार-चक्र को रोकने के लिये मिला है। यह परम् कल्याण करने के लिये मिला है।

जन्म होने के साथ-साथ इस जीव को कर्मों के चक्कर में प्रीति कराने वालों का संयोग होने लगता है और उसको बचपन से युवावस्था तक घनघोर कर्मों के चक्कर में उलझा देते हैं। जिन चक्करों से मुक्त होने के लिये मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ वह पुन: चक्करों के जाल में फँस जाता है श्री गीता अ०९ श्लोक ३ ।

दु:खालय स्वरूप नाशवान मोह-माया के चक्कर जाल से छुड़ाने वाले एक ॐ आनन्दमय प्रभु के विधान के अतिरिक्त अन्य और कोई शक्ति नहीं है।

खेल-तमाशे वाले भी, खेल-तमाशे के चक्करों में घुमाते रहते हैं। नाना प्रकार के झूलों में घुमाते रहते हैं। अब वर्तमान में हमारे श्री राम देव जी महाराज योग आसन के चक्कर में लाखों नर-नारियों को घुमा रहे हैं, परन्तु कल्याण चाहने वाले प्रेमियों सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनन्त ब्रह्माण्डों के संचालन कर्त्ता समस्त भू-मण्डल के नारी-नरों के प्रति जो आदेश है, वह समस्त गीता में है और मुख्य रूप से योगी बनने का आदेश श्री गीता अ० ६ श्लोक ४७ में है। यही योग समस्त दु:खों के चक्करों को समाप्त कर परम आनन्द, परम शान्ति प्राप्त कराकर सदा के लिये मुक्त कर, परमधाम प्राप्त कराने वाला है। ''योगी बनने के लिये आज्ञा''।

हे प्रेमियों, सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुये अन्तरात्मा से मुझको ही निरन्तर भजता है। वह योगी मुझे परम् श्रेष्ठ मान्य है।

ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी द्वारा बताये योग की सिध्दि प्राप्त कर ली तो फिर किसी योग की आवश्यकता नहीं अन्यथा संसारिक नारी-नरो द्वारा चलाये जाने वाले हज़ारों योग के नाम से चल रहे एक की तो बात ही क्या हजारों मिलकर भी उनकी शक्ति, उनकी दिव्यता उनके योग के सामने सब जुगूनों के समान भी नहीं होंगे।

श्री गीता ६ श्लोक ४६, ४७ ।

जन्म मृत्यु दायक दु:खालय स्वरूप, प्रदूषणों से भरे हुये एवं दिमागी रोगों से तप्त (दिमागी रोग- काम-क्रोध, लोभ-मोह, ममता, राग-द्वेष आदि) देह-दिमाग को कोई भी प्रतिष्ठित-वैज्ञानिक डॉक्टर, वैद्य, योगी, महात्मा, सिद्ध-साधक सदा निरोग स्वस्थ्य प्रसन्न नहीं रख सकता। अन्त में विपरीत कर्म धर्मों के परिणाम स्वरूप अनेक चित्त-विभ्रान्ता मोह जाल समावृत्ता:।

अत: ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी के बनाये हुये विधानों के विपरीत धर्म-कर्म करने-करवाने वाले सदा पश्चाताप के ताप से तपायमान रहेंगे। श्री गीता अ० ३ श्लोक ३० से ३२ तक पठन करें। —

शान्तिमय

ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय

दिमागी-सम्पत्ति के दाता ॐ श्री ध्यानाचार्य श्री गुरु-देव भगवान की अमृत-वाणी

से होने वाले अनुभव-धारा का कुछ...अंश ।

ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी की मङ्गलकारी रचना में वर्तमान में मानव मण्डल का चाहे धनी हो अथवा गरीब हो, उच्च पदाधिकारी हो अथवा निम्न-कर्मचारी हो, उच्च कुल का अथवा निम्न कुल का हो, सभी के पेट इतने विशाल और गहरे हो गये हैं कि रात-दिन झूठ, कपट, जालसाजी, रिश्वत के द्वारा धन उपार्जन करके भी वह गहरे गड्ढे भरने में नहीं आ रहे हैं। जितना अधिक रिश्वत, बेईमानी, झूठ, कपट से भरने का प्रयत्न जोरों से किया जा रहा है उतनी भूख और अधिक बढ़ती जा रही है। सारा समाज छोटे-छोटे छात्र-छात्राओं से लेकर बड़े-बड़े आयुष्वान इस महामारी के चपेट में चल रहे हैं। इसी से दिमागी-रोगों की अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है।

दुर्योधन जन शक्ति-बल, बाहुबल, अस्त्र-शस्त्र-बल, मान-बड़ाई और पद-प्रतिष्ठा से सम्पन्न था परन्तु कूल्हे की हड्डी चूर हो जाने के कारण प्राण-निकलने की तैयारी है और झूठ, कपट, जाल-साजी, बेइमानी का पापी मन अभी तृप्त नहीं है, भूख की जलन सता रही है, सोचता है मेरे कुल में अब पानी देने वाला भी कोई नहीं रहा, अभी पाँचों पाण्डव जीवित हैं, उनको मारने का मनन-विचार चल रहा है, अश्वस्थामा खोज करता हुआ आता है, इस दशा में देखकर रोता है। दुःखी होकर वचन देता है कि यदि कोई इच्छा है तो पूरी करूँगा। दुर्योधन ने विचार कर रखे थे परन्तु वह उसके विचारों को करने में असफल रहा और अन्त में वह अत्यन्त दुःखी, निराश होकर सदा के लिये निर्जन स्थान पर सो गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि झूठ, कपट, रिश्वत, बेइमानी और जालसाजी से उपार्जित धन से जीवन में कभी तृप्ति नहीं हो सकती। जैसे अग्नि में घृत को डालने से वह प्रज्ज्वलित ही होती जायेगी।

इसी प्रकार हर इन्द्रियों के विशाल केन्द्र हैं अर्थात् गड्ढे हैं। जो दर्शन-श्रवण कर प्रेमी-पदार्थों के भोग-रमण से आज तक नहीं भरे, अर्थात् अनादि काल से आज तक मानव की उनसे तृप्ति नहीं हुई और न ही भविष्य में होगी।

इसीलिये गीता में भगवान ने चेतावनी दी और सावधान किया अ॰३ श्लोक ३६ में–

कि दर्शन-श्रवण-पठन करते-करते रजोगुण उत्पन्न हो जाता है उससे काम की वृत्ति उत्पन्न होती है और यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी अघाने वाला नहीं और बड़ा पापी है.... इसलिये इसको इस विषय में वैरी अर्थात् दुश्मन मानों।

रावण को क्या कमी थी, सब प्रकार से सम्पन्न, वेदाचारी कुशल था लेकिन नारी की भूख ने देह-दिमाग, जन-परिवार, मान-सम्मान और पद-प्रतिष्ठा सबको मटिया-मेट कर दिया।

नारी के राग ने, भक्त के मान-सम्मान से प्रतिष्ठित, श्री नारद जी को प्रतिष्ठित भरी सभा

में अपमानित कर अति व्याकुल शोकातुर बना दिया। यह सब बड़ी-बड़ी हस्तियाँ हुई। वर्तमान की दयनीय और सोचनीय स्थिति को देखकर क्या कहा जाये। इस भयङ्कर आग रूपी महामारी से जो बच जाये वहीं भगवान की कृपा-शक्ति का पात्र है अथवा भाग्यशाली है।

आखिर एक म्यान में दो तलवार कैसे रहेगी, इसी प्रकार भक्त का मान-सम्मान प्राप्त होता रहे और नारी-सुख-प्रेम भी बना रहे यह असम्भव कैसे सम्भव हो सकता है। एक का तो नाश होगा परन्तु अब यहाँ गम्भीरतापूर्वक मनन-विचार का रहस्य का विषय है। वह क्या है?

विचार करें, नारी-प्रेम का नाश कर दिया तो भक्ति का विकास हो जायेगा। हाँ यदि भक्ति का नाश कर दिया और नारी प्रेम का विकास कर लिया तो नारी-प्रेम का विकास होने पर भी वह ठहरेगा नहीं, क्योंकि इस प्रेम के तत्त्वज्ञ महापुरुषों ने क्षणिक, नाशवान, क्षणभङ्गुर और दु:ख ही कथन किया है फिर क्या दोनों तरफ से अनाथ की तरह मारे गये अर्थात् कहावत के अनुसार न माया मिली और न भगवान। इसलिये गीता कहती है– ''मनुष्याणं सहस्त्रेषु, कश्चिद्यतति सिद्धेय।।'' हजारों में कोई एक चेतता है।

अत: सन्त चेतावनी में कहा है–

''चलती चक्की काल की, पड़े सभी पर चोट।
कोई-कोई योगी बच गए, आनन्दमय ब्रह्म की ओट।।
मन दिया कहीं और ही, तन सज्जनों के संग।
कहे दास कोरी-गजी, वैसे लागे रंग।।''

फिर और समझाया कि–

''मन के मारे बन गए, बन तज बस्ती माहीं।
कहे दास क्या कीजिये। यह मन ठहरे नाहीं।।''

यह है स्वतंत्रता पूर्वक दर्शन-श्रवण कर मनमाने कर्मों का फल। मन को ठहराने का मानव मात्र के लिये सर्वशक्तिमान की तरफ से एक ही आदेश संकेत-इशारा श्री गीता अ॰ ३ श्लोक २१, अ॰ ४ श्लोक ३४ में कथन किया है।

बहुमूल्य समय की भागने वाली रफ्तार से आगे-बढ़ने का एक मात्र साधन है– ''तीव्र वैराग्य'' फिर सभी साधनों की सिद्धि सुगमता से होती है। श्री गीता अ॰ १५ श्लोक ३ में दृढ़ वैराग्य रूपी शस्त्र के द्वारा ही इस अहंता-ममता और वासना वाले सुख रूप संसार वृक्ष को काट डालने का आदेश देकर पुन: ४ और ५ में अविनाशी-परमपद को प्राप्त करने का साधन की विधि बतलाई। जिज्ञासु-श्रद्धालु भक्तों को समय, दृढ़ता-पूर्वक निकालकर इसका पठन-श्रवण कर धारण करने के लिये पुरुषार्थशील होगा चाहिये।

ऊपरी दिखावे की चमक-दमक की सुन्दरता से अन्दर की चिनगारियाँ निकलनी शान्त नहीं होगी। अत: हम लोगों को अन्दर-बाहर के भावों से, आचरणों से, शुद्ध-पवित्र होना है। मंत्र-शक्ति, ध्यान-शक्ति, ज्ञान-शक्ति हमारे साथ है। अन्यथा सुन्दर चमकने वाले लाइटर में केवल अन्दर चिनगारी रूपी आग ही आग है। **–ॐ शान्तिमय**

ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय

विशेष गम्भीरता पूर्वक विचारणीय विषय

इस ब्रह्माण्ड में भगवत-शक्ति के समान कोई शक्ति नहीं, भगवत ज्ञान के समान कोई ज्ञान नहीं, भगवत सुख-शान्ति-आनन्द के समान कोई सुख आनन्द नहीं, भगवत पद के समान कोई पद नहीं, और भगवत कृपा के समान कोई कृपा नहीं, ब्रह्मवेत्ता, तत्त्वज्ञानी महापुरुषों के समान कोई महापुरुष नहीं।

परमधाम के समान कोई धाम नहीं, परमधाम को प्राप्त कर फिर संसार में वापस नहीं आते, वह मेरा परम-धाम है श्री गीता अ॰ ८ श्लोक २१-२६ ।

वह परमधाम स्वयं प्रकाशमय है। सूर्य चाँद को स्वयं प्रकाशित करता है परन्तु विचारणीय विषय तो यह आता है कि ऐसा दु:खों से रहित, परम आनन्द-शान्ति दायक है, फिर भी वर्तमान की तो बात ही क्या और भविष्य के लिये भी क्या कहा जाये जब कि प्राचीन के शास्त्रों में या अन्य भी पठन-श्रवण करने को नहीं मिलता कि किसी पिता ने अपने पुत्रों को भगवत-कृपा-शक्ति प्राप्त करने के लिये भगवत-मार्ग में लगाया हो, भगवान का भक्त बनाया हो। हाँ भगवत अराधना करने-वाले पुत्रों को भगवत्-मार्ग से च्युत करने वाले, उनकों कष्ट देने वाले, उनको भयभीत करने वालों के नाम मिल जायेंगे। उनमें से...

जैसे अष्टावर्ग जी के पिता जी के सम्बन्ध में श्रवण किया हुआ था कि जब अष्टावर्ग जी गर्भ में थे, तभी उनको ब्रह्म ज्ञान हो गया था। एक समय अष्टावर्ग जी के पिता उनकी माता जी को वेद-वाणी सुना रहे थे। उस समय गर्भस्थ शिशु ने कहा, यह विषय आप गलत बोल रहे हैं। यह सुन कर पिता में रोष आ गया, पुन: रोष को शान्त कर, जब आगे फिर सुनाने लगे, तब फिर गर्भस्थ शिशु ने कहा कि यह गलत बोल रहे हैं, अब तो पिता पूरे रोष में आ गये और अति क्रोध में बोले कि अभी तो गर्भ में रहते हुए मेरा अपमान कर रहा है, जब पैदा होगा तब क्या-क्या करेगा और क्रोध के आवेश में आकर माता के पेट में जोर से लात मारी, गर्भस्थ शरीर निर्वाण में था अत: शिशु का अंग आठ जगह से टेढ़ा हो गया। इसलिये जन्म होने पर शरीर का अंग आठ जगह से टेढ़ा होने के कारण, इनका नाम अष्टावर्ग पड़ा। यह जन्म से ब्रह्मज्ञानी थे, मन की एकाग्रता के ज्ञाता थे, कथा और बहुत विस्तार से है। इन्होंने अपने बाल्य-काल के जीवन में अपने पिता जी सहित बड़े-बड़े ज्ञानी, साधू, महात्माओं को जिनको वास्तविक ज्ञान न होने के कारण उस समय के राजा ने, उन सबको कैद कर रखा था। श्री अष्टावर्ग जी ने सच्चे ज्ञान को देकर राजा का समाधान किया, और सबको कैद से मुक्त किया।

कहने का तात्पर्य यह है कि पिता ने अपने ज्ञानी प्रभु भक्त पुत्र के साथ गर्भस्थ अवस्था में ही कितना बड़ा अत्याचार किया फिर ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी की भक्ति में लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। जबकि माता-पिता अपने आपको बच्चों के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखलाते हुये कर्त्तव्यशील समझते हैं, परन्तु ऐसी सहानुभूति कर्त्तव्यशीलता से क्या लाभ यदि होने वाले और आने वालों दु:खों का यदि अन्त नहीं होता। अ॰ ६ श्लोक २३, अ॰ ५ श्लोक २२ ।

यह बुद्धिमान, विवेकशील कर्त्तव्य नहीं है, आज तक कोई माता-पिता अपने बालक बालिकाओं को भगवत विमुख कर, महाभाग्यवान नहीं बना सके। महा भाग्यवान-भाग्यशाली बनाने का मतलब उनको प्रभु-भक्ति में लगाना।

हाँ प्राचीन गाथाओं में माताओं के तो शुभ नाम आते हैं जिन्होंने अपने पुत्रों को भगवत मार्ग में लगाया। उनके अन्दर प्रभु भक्ति के प्रति श्रद्धा-प्रेम-विश्वास का संचार किया जैसे माता मदालता का नाम आता है। ध्रुव की माता जी का नाम आता है और लक्ष्मण जी की माता जी का नाम है, प्रभु भक्ति के ज्ञाताओं ने तो यहाँ तक निन्दनीय शब्दों का प्रयोग किया है कि वही माता धन्य है, पुत्रवती है, जिनका पुत्र भगवान की भक्ति के मार्ग पर लगा हुआ है। शेष माताओं को तो बाँझ ही घोषित किया।

हाँ, वर्तमान में ॐ आनन्दमय अनुरागियों में कुछ माता-पिता अपने बच्चों को भगवत मार्ग पर चलाने में प्रयत्नशील रहे हैं, परन्तु अज्ञानमय ज्ञान से मोहित एवं राग-द्वेष, काम-क्रोध, ईर्ष्या-कलह आदि से पीड़ित, दर्शन-श्रवण से धर्म-कर्मों में प्रवृत्त रहने वाले मानव निरन्तर धारावत बहने वाली नदी की तरह बहते जा रहे हैं। जैसे दीपक की लौ कि प्रकाश में चारो तरफ से पतंगों की बौछार बहती हुई आती है, परन्तु मिलता क्या है? जीवन की समाप्ति-प्राणों की आहुति।

श्री गीता अ॰ ७ श्लोक २७, २८, २९ । श्लोक २७ का हिन्दी अर्थ– श्री तत्वदर्शी भगवान कथन कर रहे हैं कि– "हे प्रेमियों, संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दु:खादि द्वन्द्वरूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं।

श्लोक २८ का हिन्दी अर्थ– निष्काम तत्त्व के आचार्य भगवान कथन करते हैं कि निष्काम-भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले, जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेष जनित द्वन्द्व-रूप मोह से मुक्त दृढ़ निश्चयी भक्त सब प्रकार से मुझे भजते हैं।

अत: जब तक राग-द्वेष, ईर्ष्या-कलह है तब तक श्रेष्ठ कर्म नहीं हो सकते, पाप कर्म ही होंगे, जिनकी जानकारी के लिये श्री गीता अ॰ १६ श्लोक ७ से १९ तक पठन-श्रवण करना चाहिये।

श्रेष्ठ कर्मों के प्रभाव से फिर आगे का मार्ग सुगम हो जाता है जैसा कि अ॰ ७ श्लोक २९ में ॐ आनन्दमय भगवान कथन करते हैं कि जो मेरी शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिये यत्न करते हैं वे पुरुष ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं अर्थात् इसके आगे फिर कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रहती।

परन्तु इस प्रकार ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी की शरण लेकर श्रेष्ठ कर्म करने वाले हज़ारों में कोई एक ही ॐ आनन्दमय भगवान की प्राप्ति के लिये यत्न करने वाले होते हैं।

शेष तो इन्द्रिय विषय भोगों की फिसलन में गिर कर अंग-भंग होते रहते हैं, भक्त नारद मुनी जी का मान-सम्मान-प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती रहे और नारी की प्राप्ति भी भगवान की आड़ में धोखा देकर प्राप्त हो जाये। यह छल, कपट की महामारी ॐ आनन्दमय भगवान की सत्ता में नहीं चल सकती। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। सर्वशक्तिमान जी भक्त की मान-प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये विषय भोगों की आसक्ति नष्ट करने के लिये बन्दर का रूप देकर रक्षा करते हैं।

यद्यपि सकामी अभक्त, आसुरी प्रकृति के लोग साधू, महात्मा, योगी बनकर भोग-परमा की सिद्धि तो प्राप्त कर लेते हैं। जैसे महात्मा के वेश में छल-कपट कर नारी की प्राप्ति तो कर ली, परन्तु परिणाम क्या हुआ, दशानन होने पर भी एक सिर भी नहीं बचा सका, अत: दसो सिर सहित घर-परिवार, राज-समाज समेत सभी कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

फिर भक्त बनकर भगवान की ओट में विषय भोगों की इच्छा करे यह बेइमानी प्रभु पिता जी के दरबार में नहीं चल सकती।

निष्कामी अर्थात् सच्चा भक्त । भक्त का भूषण है निष्कामता । निष्कामता नहीं, तो वह भक्त नहीं । निष्कामी भक्त का ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी से संयोग हो जाता है, उसको सर्वज्ञ शक्तिमान सबके सुहृद-प्रेमी-हितैषी हैं, इसका अनुभव हो जाता है, फिर उसे संसार के बाबाओं की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। (जैसे वर्तमान में दुग्धाधारी बाबा, देवरहा बाबा, पायलेट बाबा, टाट वाले बाबा, साईं-बाबा, जयगुरुदेव बाबा आदि।)

परन्तु अज्ञानमय ज्ञान की छाया में पौषित होने वाले धन, मान, भोग कामनाओं से पीड़ित कामी, क्रोधी, लोभी मनुष्यों की खोज तो जीवन-पर्यन्त बनी रहती है और ऐसे ही कामी-भोगी, लोभी मनुष्यों की तृप्ति करने वाले छली, कपटी, मायावी, सिद्धि के दाता चमत्कारी साधु, महात्मा बाबाओं का आगमन होता ही रहता है अर्थात् प्रगट होते रहते हैं।

आज भी ऐसे कोई चमत्कारी वेश-भूषा के महात्मा बाबा का विज्ञापन हो जाये और इस प्रकार विज्ञापन करने वाले एजेण्ट भी बहुत कुशल होते हैं वे यदि ऐसा विज्ञापन करदें कि एक ऐसे सिद्ध अवतारी महात्मा ऐसे निर्जन शान्त स्थान पर रहते हैं और उन्होंने ऐसी सिद्धि प्राप्त की है कि वह मनुष्य की आयु को २५-५० साल बढ़ा देते हैं और केवल मात्र पूजा सिद्धि के रूप में २५१ रुपये लेते हैं फिर तो सम्भव है एक दफे तो युवा-जवानों की बात तो पीछे- बुजुर्ग, वृद्ध, वृद्धाओं की २४ घण्टे कतारें लग जायेंगी।

परन्तु भगवत परायण निष्कामी भक्त ऐसे मायावी जाल से सदा के लिये मुक्त रहते हैं। उनको ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी का वरदान प्राप्त हो जाता है। कि– ''न तेष रमते बुधा:'' श्री गीता अ॰ ५ श्लोक २२ । वह बुद्धिमान हो जाते हैं, भगवत परायण हो जाने से उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियों सहित मन वश में हो जाता है, स्थिर हो जाता है श्री गीता अ॰ २ श्लोक ६१ ।

अन्यथा भगवत परायण न होने से सकामी मनुष्यों का क्रम-क्रम से पतन होता हुआ अन्त में सदा के लिये नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। श्री गीता अ॰ २ श्लोक ६३ एवं अ॰ १८ श्लोक ५८ । **–शान्तिमय**

ॐ आनन्दमय **ॐ शान्तिमय**

योग और योगा

परम् रहस्यमय ज्ञानों से परिपूर्ण श्री गीता शास्त्र के प्रवक्ता स्वयं ही परम् - रहस्यमय तत्त्वों से परिपूर्ण विशेषज्ञ और वैज्ञानिक थे।

योग रहस्यमय तत्त्व को जैसा श्री गीता शास्त्र में भिन्न-भिन्न स्थलों में समझाया है, ऐसा कहीं अन्य किसी शास्त्रों में देखने सुनने को नहीं मिलता।

श्री गीता का योग दिमाग से अर्थात् मानसिक स्थिति से सम्बन्ध रखता है, गीता का योग शरीर से सम्बन्ध नहीं रखता, हाँ, दिमागी-योग की सिद्धि होने पर शरीर सम्बन्धी योग की सिद्धि का फल अपने आप प्राप्त हो जाता है परन्तु, गीता में शरीर स्वस्थ्य-प्रसन्न रहे, ध्यान-योग की प्राप्ति हो, इनके लिये आहार-विहार तथा शयनादि नियम और उनके फल का प्रतिपादन अ॰ ६ के श्लोक १६-१७ में किया है और अन्त में ऐसे ही योगी की महिमा का कथन कर ध्यान-योगी बनने का ही आदेश दिया है।

योग का तात्पर्य ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, प्रेमयोग तथा ध्यान-योग से है परन्तु योगा का तात्पर्य शारीरिक सम्बन्धी आसन-व्यायाम एवं कई प्रकार की सम्बन्धी क्रियाओं से किया गया है।

जीव और ब्रह्म का वियोग अनादि काल से जन्म-मरण के चक्कर से चलता आ रहा है, यही हमारे त्रिकाल-दर्शी महापुरुषों का अनुभव है। जन्म-मरण के चक्कर को समाप्त करने के लिये ही और ॐ आनन्दमय परमात्मा से योग करने के लिये ही दयामय ॐ आनन्दमय प्रभु पिताजी, मानव जीवन देते हैं अर्थात् ॐ आनन्दमय परमात्मा से योग करने का अधिकार मानव-जीवन को ही है।

मानव-जन्म का मिलना ही अन्तिम यात्रा है।

श्री गीता कहती है कि वैराग्य द्वारा बुद्धि के शुद्ध, स्वच्छ और निश्चल हो जाने पर परमात्मा का संयोग हो जायेगा। अ॰ २ श्लोक ५३ का हिन्दी अर्थ है कि और भाँति-भाँति के वचनों से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल और स्थिर ठहर जायेगी तब तू योग को प्राप्त हो जायेगा, अर्थात् तेरा परमात्मा से नित्य संयोग हो जायेगा।

ॐ आनन्दमय परमात्मा का नित्य संयोग हो जाना ही योग की वास्तविक स्थिति है, अर्थ है, यही पूर्ण स्थाई, नित्य परम् आनन्द, परम् शान्ति, परम् सुख की प्राप्ति का वास्तविक सत्य मार्ग है। जन्म जन्मान्तर के दु:खों का अन्त करने का साधन है। सुखमय जीवन यात्रा चलाने का सुगम पथ-प्रदर्शक है।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी विपरीत योग-योगा का अभ्यास केवल मात्र शरीर की क्षमता-शक्ति में सहयोग प्रदान करता है। हाँ इन्द्रियों पर विशेष नियन्त्रण की हर समय आवश्यकता है।

योगा-शरीर को स्वस्थ्य एवं मन को कुछ समय तक सम-शान्त-प्रसन्न रखने में सहयोग देता है, परन्तु समस्त मानसिक विकारों की शान्ति हो जाये अथवा भविष्य में आने वाले महान-दु:ख रूप जन्म-मरण के बन्धन समाप्त हो जायें, यह सम्भव नहीं।

अत: समस्त मानसिक रोगों की शान्ति और महान दु:ख रूप, जन्म-मरण के बन्धनों की समाप्ति एक मात्र ॐ आनन्दमय परमात्मा से योग होने पर ही होगी। ॐ सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान प्रभु पिता जी का यही आदेश श्री गीता अ॰ ६ श्लोक ४७ में है ।

ॐ शान्तिमय

अमृतमय शुद्ध ज्ञान से पूर्ण महासागर श्री विश्वशान्ति ग्रन्थ भाग-१ के मानसिक चिकित्सा के सूत्र सं॰ ३४ पर मनन-विचार।

ॐ आनन्दमय **ॐ शान्तिमय**

दिमागी-रोग-दमनकारी

विधानों को श्रद्धा-प्रेम-विश्वास पूर्वक श्रवण, पठन करने के अनुरागी भक्त मण्डली के समक्ष आज के मङ्गलकारी शुभ-दिवस पर श्री विश्वशान्ति ग्रन्थ भाग-१ में प्रकाशित मानसिक चिकित्सा नामक ज्ञान-लेख के ३४ वें सूत्र पर मनन-विचार किया जायेगा। गत सप्ताह में सूत्र संख्या ३३ पर मनन-विचार किया गया था।

मानसिक चिकित्सा के ज्ञान से सूत्र सं॰ ३४ उच्चारण किया जा रहा है।

हे श्री शान्तिमय प्रभो ! मैं भगवत आश्रय भावमय हूँ। व्यक्ति आश्रय भावमय नहीं।

हाँ, यह सूत्र केवल एक लाइन में आ गया है परन्तु मनन-विचारों द्वारा इसको लिखना प्रारम्भ किया जाये तो सम्भव है कई सौ लाइनें भी कम रह जायेंगी और इसका प्रभाव एवं शक्ति पर विचार किया जाये, तो उस समय विश्व की समस्त शक्ति वैसे ही निष्फल होकर आजीवन दु:ख-दायक पश्चाताप करायेगी, जैसे- बीजों के ऊपर आश्रित रहने वालों का जब बीजों का अंकुर होने वाला भाग निष्फल हो जाता है तब उससे होने वाले सब लाभ की आशा समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार एक व्यक्ति का आश्रय लेने की बात तो अलग रही। एक भगवत आश्रय का त्याग करने वाला और संसार की समस्त शक्ति का आश्रय लेने वाला चाहे देह बल का, रूप-सौन्दर्य बल का हो, धन सम्पत्ति का हो, बल-शक्ति यौवन का हो, पद-कुर्सी का हो, मठ-मन्दिर, आश्रम का हो एवं और भी जो हैं। फिर भी वह किसी स्थिति में किसी समय किसी परिस्थिति में भी अपनी सुरक्षा नहीं कर सकता अर्थात दिमागी रोगों के ताप से नहीं बचा सकता। श्री गीता अ॰ २ श्लोक ४९ !

अत: मंत्र शक्ति के अनुभवी प्रेमियों ! केवल मात्र एक भगवत-आश्रय ही ऐसी महान शक्ति के सम्पन्न है कि उसका आश्रय लेने के बाद फिर भौतिक जगत के समस्त आश्रयहीन जो जाते हैं। परन्तु ऐसा लेने वाला हजारों में कोई विरला ही होता है। श्री गीता॰ ७ श्लोक ३ !

जैसे– जब लंका नगरी में भरी सभा में श्री अंगद जी ने भगवान का आश्रय लेकर अपना पैर स्थिर कर लिया तब योद्धाओं से भरी सभा उनके पैर को हिला न सकी। सभी बलशाली योद्धा लज्जित हो गये और भगवत-आश्रय लेने वाला सदा-सम-शान्त प्रसन्न रहा। भगवत् आश्रित हुआ निरन्तर परमानन्द में ही मग्न रहता है और अन्त में दु:खालय स्वरूप जन्म-मरण से मुक्त हो परम-पद को प्राप्त हो जाता है। अ॰ २ श्लोक ५१ और भी हैं।

एवं व्यक्ति-आश्रय वाला मनुष्य जीवन भर दिमागी रोगों से पीड़ित रहता हुआ हर समय हर परिस्थिति में दु:खी अशान्त राग-द्वेष, कलह-क्लेश, चिन्ता, नाराज़गी के ताप से व्यथित परेशान रहता हुआ अन्त में पुन: आसुरी योनि मा पन्ना मूढ़ा जन्मनि-जन्मनि के चक्करों में चला जाता है। श्री गीता॰ अ॰ १६ श्लोक १९-२० !

विश्व में अरबों मनुष्यों की संख्या है, परन्तु उनमें मनुष्य कहलाने योग्य कितने हैं ! यद्यपि मानव का आकार तो प्राप्त हो गया है, श्री गीता अध्याय ५ श्लोक २३ में भगवान कहते हैं कि जो काम-क्रोध के वेग को सहन करने में समर्थ है अर्थात जिसने काम-क्रोध के वेग को जीत लिया है वह नर है अर्थात वही मनुष्य है, वही सुखी है और वही योगी है ! शेष पशु के समान ही हैं। क्योंकि मानव की क्रियाओं में और पशु में एक समान। इस घनघोर अबादी वाले मण्डल में कितने मानव को ब्रह्मदर्शी महापुरुषों का संग प्राप्त हुआ कितने भगवत-आश्रय भावमय हैं और कितने व्यक्ति आश्रय भावमय हैं।

इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण एक छोटे परिवार में ही मिल जायेगा। और निकट देखें तो अपने घर परिवार में मिल जायेगा। दस प्राणी एक परिवार में है तो आस्तिक बुद्धि से विचार करे, तो एक भी पूर्ण-रूप से भगवत-आश्रय-भाव वाला नहीं मिलेगा। सभी अहं के आश्रय भावमय में ही मिलेंगे ! कितना बड़ा भयंकर जाल है।

आजकल तो प्राय: मनुष्यों का जीवन पशुओं की भाँति व्यतीत हो रहा है। खाने-पीने में, भोगों को भोगने में, उनकी पूर्ती करने में, धन कमाने में, राग-द्वेष, ईर्ष्या-कलह करने-कराने में शयन आदि करने में एवं और अनेकों पाप कर्म करने-कराने में व्यतीत हो रहा है।

यह दुर्लभ अमूल्य जीवन केवल मात्र भगवत-आश्रय होने के लिये प्राप्त हुआ था। परन्तु मानव संसार का आश्रय लेकर इस बहुमूल्य जीवन का अत्यन्त दुरुपयोग कर रहा है। इस प्रकार का ज्ञान कराने वाले महापुरुष ही होते हैं जो प्रभु कृपा से मिलते हैं, श्री ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों का एक ही भाव होता है। एक ही लगन होती है कि मानव जन्म पाकर फिर भगवत प्राप्ति से वंचित न रह जायें। उनकी लगन जीवन पर्यन्त मनुष्यों को इसी ओर आकर्षित कराने में लगी रहती है। **ॐ शान्तिमय**

* * *

ब्रह्म-वेत्ता, तत्त्वज्ञानी महापुरुषों का निर्णय।
त्याग-वैराग्य के बिना किसी साधन की सिद्धि नहीं हो सकती ।
क्योंकि श्री गीता कहती है– अ० २ श्लोक ६२ में.....

ध्यायतो विषयान्पुंसः – यह करना अपराध है, अर्थात पाप है, फिर सङ्ग स्तेषूपजायते : क्या हुआ बाँधा गया – जैसे बँधा हुआ पदार्थ हो या प्राणी हो जहाँ बँधा है वही उसी परिस्थिति में सुख दुःख को भोगना पड़ता है। पुनः आगे की स्थिति का वर्णन करते हुए श्लोक ६३ में कथन किया कि– मूढ़भाव स्मृति में अर्थात् याद्दाश्त में भ्रम, ज्ञान-शक्ति का नाश और बुद्धि के नाश हो जाने से मानव की मनुष्यता का नाश हो जाता है।

इसलिये हर समय भगवत-आदेश के अनुसार त्याग-वैराग्य का नशा चढ़ा रहे। तभी जन्म-मृत्यु दायक दुःखों के समूह को, माया-मय संसार के चक्र को समाप्त किया जा सकता है अन्यथा दुरत्या माया दुःखी, अशान्त, परेशान करती रहेगी। अतः

बोलो कम, बहुत सुनने की आदत कम, समझो ज्यादा, मनन-विचार और ज़्यादा, परन्तु धारण करने की आदत पूर्ण। साधारण त्यागी-वैरागी की तो बात क्या निर्जन जङ्गलों में निवास करने वाले भगवान राम के पास भी माया पहुँच जाती है। अर्थात् सूपनखा भगवान के पास पहुँच कर अपने हाव-भाव, राग-रागनी का प्रभाव छोड़ती है। बहुत प्रकार की चेष्टा करने पर भी सब निष्फल, तब भगवान ने संकेत, सीता की तरफ करके, कि मैं तो विवाहित हूँ और श्री लक्ष्मण की तरफ संकेत कर दिया। वह जानते थे- श्री लक्ष्मण जी इस सुन्दर-रूप मोहनी का इन्तजाम कर सदा के लिये सन्तुष्ट कर देगें ।

'माया' सूपनखा अब लक्ष्मण जी के पास पहुँचती है और बहुत प्रलोभन से, प्रेम से, राग-रागिनी से विचलित करने का प्रयत्न करती है। लक्ष्मण जी ने भी उसे बहुत प्रकार से समझाया, अन्त में और कोई उपाय न देखकर शीघ्रता से उसके नाक, कान काट दिये, मिनटों में उसके रूप रंग को अपनी त्याग-वैराग्य वृत्ति से कुरूप बना दिया । इसलिये

ॐ आनन्दमय परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा करने वालों को हर समय दुरत्या-माया की नाक-कान काटते ही रहना चाहिए। श्री गीता अ० २ श्लोक ५२-५३ में वैराग्य द्वारा बुद्धि के स्वच्छ, शुद्ध और निश्चल हो जाने पर ॐ आनन्दमय भगवान प्राप्ति होने का कथन किया है। पुनः ....

श्री गीता अ० ५ श्लोक २२ में बुद्धिमान उनको ही बताया गया है जो माया रूप विषयों में नहीं रमते एवं श्री गीता अ० १५ श्लोक ३ में तो एकदम इस माया रूप संसार का निर्मूल कर डालने का आदेश दिया। इस श्लोक में दुरत्या माया को संसार-वृक्ष से समझाया है। वृक्ष को काटने के शस्त्र की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये अहंता-ममता-वासना रूप अति दृढ़ मूलों वाले संसार रूप पीपल के वृक्ष को वैराग्य रूपी-शस्त्र के द्वारा काट डालने का आदेश दिया है। इसके बाद ही आगे होने वाली साधना होगी । इसी को श्लोक ४ में समझा रहे हैं कि दुरत्या माया रूपी अहंता-ममता-वासना रूप दृढ़ मूलों वाले संसार रूपी पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्य रूपी-शस्त्र से काटकर- (दृढ़ वैराग्य - शमशानी वैराग्य काम नहीं करेगा।)

इसके पश्चात उस परम पद रूप ॐ आनन्दमय परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिये, जिसमें गया हुआ मानव फिर लौटकर संसार में नहीं आता और जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी आदि पुरुष ॐ आनन्दमय भगवान के मैं शरण हूँ। इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस आनन्दमय परमेश्वर का ही मनन और ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार भगवत् - विधान के आदेशानुसार साधन में प्रवृत्ति बनाये रखने से मार्ग बहुत ही सुगम, सरल हो जाता है ।

अन्यथा दुरत्या माया आती रहेगी, फुसलाती रहेगी, अपना मोहनी रूप, रंग दर्शाती रहेगी, मन को बहला देने वाला सुमिरण का आश्रय काम नहीं करेगा। मन में छुपी मालिक बनने वाली आस को, निकालने की शक्ति समाप्त कर देगी। फिर संग उनका ही करायेगी, जिनको प्रभु पिता जी का डर नहीं रहता एवं सेवा में मन नहीं लगने देगी। और हुक्म मानने की शक्ति भी समाप्त कर ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी का दास न बना कर संसार के प्रेमी-पदार्थों का दास बना देगी है।

ॐ शान्तिमय

अनुभव कोश का कुछ अंश

बहुमूल्य जीवन का समय, थोड़ा शेष रहा है। मनन-विचारों की, तारतम्यता की सीमा नज़र नहीं आ रही है । फिर क्या रुकना है, नहीं जाम में, मारे जायेंगे इसलिये जाम से निकलने के लिये आगे बढ़ना तो है, लेकिन कुछ सहारा तो लेना ही पड़ेगा ।

सहारा– श्री दयामय प्रभु पिता ने श्री मानसिक चिकित्सा के ज्ञान में १२५ सहारे दिये हैं। उन सहारों में से एक सहारे को लेकर माया के जाम से छूट जाने का, निश्चय है ।

वह सहारा है – हे श्री शान्तिमय प्रभो! मैं श्री महापुरुष द्वादश भक्ति भावमय हूँ, गुरु-द्रोह भावमय नहीं !

जिस दिन इस सहारे का तत्त्व-ठीक से समझ में आ जायेगा, उस दिन इस ठगनी माया के ऊपर अपने आप को चढ़ा पायेंगे। अभी माया हमारे ऊपर है । अभी गुरु-द्रोह की लाइन पर मन का पहिया चल रहा है ! हाँ विषय गम्भीर है और हम अपने आपको गुरु-द्रोह से मुक्त समझ रहे हैं। परन्तु अभी द्वादश भक्ति की नकली फिसलन में फिसल रहे हैं और अंग-भंग हो रहे हैं।

द्वादश भक्ति क्या है इसका स्वरूप मानसिक रोगों के कारण का ज्ञान में पृष्ठ सं. ४० पर बताया गया है। श्री विश्वशान्ति ग्रन्थ भाग १ पृष्ठ सं. ४० पर देखना चाहिये।

इसमें द्वादश भक्ति का प्रथम ही सूत्र है कि मानसिक रोगियों का संग, जब कि आनन्द किर्तन भाग-१ पृष्ठ सं.-२३ भजन से ३० में हम दूसरों को कहते हैं, समझाते हैं, वायदा करते हैं कि संग उनका ही करूँगा डर है जिन्हें तुम्हारा ! अब विचार करना चाहिये कि आज प्रभु पिता जी का डर किसको है? रामायण, भागवत, महाभारत, वेद-वेदान्तों के श्रोता और वक्ता मठ, मन्दिरों के निर्माता आश्रम पद गद्दी के स्वामी, तीर्थों में भ्रमण करता, यज्ञ, दान, तप के अनुष्ठान कर्त्ता, घर परिवार में पूजा भक्ति व्रत कर्त्ता किसको डर है। सभी अपने पद अधिकार के अनुसार झूठ, कपट, चोरी, रिश्वत, राग-द्वेष, चिन्ता-नाराजगी, क्रोध-वैर आदि कर्मों से लिप्त है इसलिये तत्त्व के निर्माता श्री विधानाचार्य भगवान ने हजारों-हजारों वर्षों पूर्व श्री गीता अ० ७ के श्लोक २७ में कथन कर दिया था कि–

हे प्रेमियों ! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्दरूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञता को प्राप्त हो रहे हैं।

अभी तो मानसिक रोगियों का संग करना, यह गुरु-द्रोह-भाव का प्रथम सूत्र है – अभी तो 11 सूत्र और हैं जो गुरु-द्रोह के हैं। इसके बाद पाठ पक्का होगा कि मैं श्री महापुरुष द्वादश भक्ति भाव-मय हूँ। अस्तु पुनः प्रभु पिता जी की प्रेरणा-शक्ति से अनुभव कोश से- **–ॐ शान्तिमय**

* * *

निष्काम भक्ति और सकाम भक्ति के पद-प्रभाव का ज्ञान

गऊ के थन में दूध तब निकलता है, जब बच्चा थन को मुँह में रख कर चूसता है। बच्चा उस समय माँ के आश्रित रहता है, इसी प्रकार परम प्रेमी श्रद्धालु भक्त एक मात्र ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी के आश्रित होकर ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय नाम का जप करता है, श्री सच्ची प्रेम भक्ति का पाठ करता है, श्री मानसिक-चिकित्सा और ब्रह्म-ज्ञान के सूत्रों को एवं श्री गुण-विद्या के विद्यार्थी का ज्ञान आदि का स्वध्याय मनन-चिन्तन करता है। तब ॐ आनन्दमय प्रभु पिता जी की कृपा से उसके हृदय में छिपा हुआ मंगलमय तत्त्व-रहस्य के ज्ञान का अनुभव होने लगता है फिर श्रद्धावान भक्त मंगलमय विधानों के रहस्य का ज्ञाता होकर सदा के लिए निर्भय, निश्चिन्त, स्थिर हो जाता है, उस समय उसके दिमाग में चारो दिशाओं में प्रज्ज्वलित हो रहे राग-द्वेष, कलह-क्लेश, अहंता-ममता, भोग-कामनाओं रूपी ताप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

हाँ, जब राग-द्वेष, कलह-क्लेश, अहंता-ममता, कामना से समस्त धर्म-कर्म किये जाते हैं, तब ॐ आनन्दमय ॐ शान्तिमय नाम के जप का, श्री सच्ची प्रेम भक्ति के पाठ का कोई प्रभाव नहीं रहता, फिर वह कलह-भक्ति करने में तन-धन, जन-मन, बुद्धि, समय-शक्ति सब कुछ लगा देता है। इस प्रकार विपरीत भावों से किये जाने वाले कर्मों से दिमागी-कोश में कलह-क्लेश, राग-द्वेष के ताप से श्रेष्ठ बुद्धि सहित हितकारी मनन-विचार भस्म हो जाते हैं एवं दीर्घ-काल तक किये जाने वाले शिथिल साधन के अभ्यास का नाम निशान मिट जाता है।

श्री सच्ची प्रेम-भक्ति का प्रभाव तो निष्कामी भक्त पर ही पड़ता है। सकामी पर तो श्री सच्ची-प्रेम-भक्ति का प्रभाव वर्षों-वर्षों तक भी नहीं पड़ता।

श्री विश्वशान्ति ग्रन्थ भाग १ में मानसिक रोगों का कारण ज्ञान-लेख में दिमागी रोगों के मुख्य चिकित्सक देव जी ने कथन किया है कि आसुरी प्रेम, द्वेष, ममता और अहंकार की रक्षा वृद्धि के उद्देश्य से कर्म करने से दूसरों के अधिकारों की हिंसा होती है। हिंसा-युक्त कर्मों के दण्ड स्वरूप मानसिक रोगों की और बौद्धिक रोगों की वृद्धि होते रहने का विधान है।

जो मानसिक रोगी हो जाते हैं, उनके अनुकूल संग-सेवा करने वाला भी मानसिक रोगी हो जाता है, वह स्वयं तो अनाधिकार के लिये बल-पूर्वक कर्म करने में प्रवृत्त होता है, साथ ही साथ आनन्दमय भक्ति के मार्ग पर चल रहे, भक्तों को भी लोभ-भय, राग-द्वेष के भावों से

बलपूर्वक प्रवृत्ति कराकर उनको भी सत्य-पथ से विचलित कर देते हैं। इस विषय का पूर्ण-ज्ञान मानसिक रोगों के कारण नामक ज्ञान को पठन करने से होगा।

दिमागी रोगों से पीड़ित स्वार्थमय कर्मों की लोभी रागी-द्वेषी मन्थरा के कुविचारों का प्रभाव माता कैकेई पर पड़ा। भगवान राम ने राज-त्याग कर १४ वर्ष वनवास जाने की प्रेम प्रसन्नतापूर्वक तैयारी कर ली, श्री भरत जी पर अहंता, ममता, रागी-द्वेषी माता की भावना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा एवं भगवान में और अटूट श्रद्धा-प्रेम-विश्वास स्थिर हो गया। श्री भरत जी ने १४ वर्ष तक कठिन साधना के बल पर निष्काम भावों की अटूट श्री सच्ची प्रेम भक्ति की प्रतिष्ठा की। लोभ-भय में आकर अपनी सच्ची प्रेम भक्ति को कलङ्कित नहीं किया। यह है सच्चे निष्कामी भक्तों के लक्षण। शेष तो स्वयं भक्ति को कलङ्कित करते हैं और दूसरों को भी रागी-द्वेषी बनाकर दण्ड के भागी बनाते रहते हैं। इसलिये श्री दादा गुरुदेव की वाणी है कि जो भगवान के मार्ग में विघ्न-बाधा पहुँचाने वाले हैं वह मित्र नहीं हैं। वह तो शत्रु हैं। ऐसों से तो वैराग्य कर दे, उनको तो सम्पूर्ण ज्ञानों में (६ प्रकार का ज्ञान) मोहित, भगवत ज्ञान से शून्य एवं कल्याण मार्ग से नष्ट-भ्रष्ट हुये ही समझना चाहिये। श्री गीता अ० ३ श्लोक ३२ उच्चारण किया जायेगा अत: श्री गीता जी अपने कर कमलों में धारण करने की कृपा करें।

अत: सभी परिस्थितियों में वैराग्य करने का भगवत आदेश है, राग-द्वेष करने का नहीं, इस विषय में सभी साधकों-भक्तों को विशेष रूप से सतर्क रहने की आवश्यकता है।

श्री विश्वशान्ति ग्रन्थ भाग १ के मानसिक चिकित्सा के ज्ञान में ५४ वाँ सूत्र है– हे श्री शान्तिमय प्रभो! मैं वैराग्य भावमय हूँ राग-द्वेष भावमय नहीं, अर्थात् राग-द्वेष का सर्वथा निषेध किया है क्योंकि जहाँ राग है वहाँ द्वेष होगा ही, अर्थात् राग की सिद्धि में मन की अनुकूलता, इन्द्रियों की अनुकूलता नहीं होगी, तो वहाँ दोष-दर्शन होगा, दोष दर्शन करते-करते फिर कथन होने लगेगा। क्रम-क्रम से इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते द्वेष और क्रोध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो जायेगी, परिणाम अ० २/६२-६३ हितकारी बुद्धि का नाश और मानव जीवन का सर्वनाश हो जाता है।

इसलिये दयामय प्रभु पिता जी ने विशेष सावधान किया कि वैराग्य कर दे परन्तु द्वेष न करें। श्री गीता अ० ३ श्लोक ३४, ४३ तक वैराग्य के श्रेष्ठ ज्ञान को कथन किया। श्लोक ३४ उच्चारण किया जायेगा। **ॐ शान्तिमय**

* * *